विपश्यना

[साधकों का मासिक प्रेरणापत्र]

रजि. नं. १९१५६/७१
पोस्टल रजि. नं. NSM-16/83

वर्ष १३ • बम्बई • बुद्धवर्ष २५२७ • कार्तिक पूर्णिमा [शक] • दि. २०-११-१९८३ • अंक ५

संवेदना

(५)

चार जन्मांध व्यक्तियोंको एक पाल्तू हाथीके समीप लाकर खड़ा कर दिया गया और उनसे कहा गया कि इसके बारेमें पूरी जानकारी हासिल कर बताओ कि हाथी कैसा होता है ? उनमेंसे किसीने हाथी कभी देखा नहीं था। देखते भी कैसे ? आंखे तो थीं ही नहीं ! अतः हाथों से टटोल-टटोलकर उसकी जानकारी लेने लगे। पहलेके हाथ हाथीके पांवको लगे। उसने टटोलकर देखा और अपना निर्णय दिया कि हाथी खंभे जैसा है। दूसरे के हाथ में हाथीकी पूंछ आयी और उसने निर्णय दिया कि हाथी झाड़ू जैसा है। तीसरे के हाथ हाथीके कान को लगे, उसने निर्णय दिया कि हाथी पंखे जैसा है। चौथे के हाथ में हाथी का दांत आया तो उसने फैसला दिया कि हाथी खूंटे जैसा है।

चारोंने अपनी-अपनी समझके अनुसार हाथीकी व्याख्या कर दी। परन्तु सबने आंशिक सत्य ही जाना, पूर्ण सत्य नहीं। अतः प्रत्येककी व्याख्या वास्तविक सत्यसे बहुत दूर रही ! आंशिक सत्य सदा भ्रामक होता है। जैसे-जैसे पूर्ण सत्यकी ओर बढ़ते जाते हैं, वैसे-वैसे भ्रम-भ्रांति दूर होती जाती है।

जब तक कोई व्यक्ति आंशिक सत्यका जीवन जीता है तब तक भ्रम-भ्रांतिका ही जीवन जीता है। जब तक किसी बातको एकांत दृष्टिसे देखता है याने एकांगी दृष्टिकोणसे देखता है तब तक आंशिक सत्य ही देखता है, भ्रामक सत्य ही देखता है। जब उसी बातको अनेकांत दृष्टिसे याने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणसे देखने लगता है तो पूर्ण सत्य देखने लगता है। प्रज्ञासे देखने लगता है। "पकारेन जानेति ति पञ्ञा" प्रकार-प्रकार से जानना ही प्रज्ञा है। इससे भ्रम-भ्रांति, माया-मरीचिका दूर हटने लगती है।

जब हम केवल बहिर्मुखी रहते हैं तो एकांगी दृष्टिसे देखते हुए आंशिक सत्यका याने भ्रम-भ्रांतिका ही जीवन जीते हैं। परन्तु जब अन्तर्मुखी होते हैं तो अनेकांगी दृष्टिसे देखते हुए भ्रम-भ्रांतियोंसे छुटकारा पाकर पूर्ण सत्यकी ओर बढ़ने लगते हैं।

अन्तर्मुखी होना हमें पूर्ण सत्यताकी ओर कैसे ले जाता है ? इसे समझें ! आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा और मनके देखने, सुनने, चखने, छूने और विचारनेके आधार पर ही हमारे लिए किसी व्यक्ति, वस्तु, घटना, स्थिति आदिका अस्तित्व है। इसके बिना नहीं। जब हम केवल बहिर्मुखी रहते हैं तो इन विषयोंके सेवन में इतने निमग्न हो जाते हैं कि उस समय उनके अस्तित्वके आधार की ओर याने अपनी ओर देखते ही नहीं। आंशिक सत्य की भ्रांतिमें अपना होश खो बैठते हैं। लेकिन जब बाह्य विषयोंके साथ-साथ सजग रहकर अपने आपको देखने लगते हैं तो बात कुछ और ही होती है। बाहरका आलंबन जब भीतर की अनुभूतियोंको उजागर करता है तो संपूर्ण सत्यकी सजगता का काम शुरू हो जाता है। "स्व" में स्थित होकर देखते हैं तो स्वस्थ होकर देखते हैं; भोक्ताभावसे निकलकर साक्षी भावसे देखनेका उपक्रम शुरू होता है। भ्रामक आंशिक सत्यसे पूर्ण सत्यकी ओर कदम उठने लगते हैं तब स्पष्ट मालूम होने लगता है कि हमारे लिए प्रत्येक विषयका अस्तित्व किसी न किसी इंद्रिय द्वार पर

धम्म वाणी

वेदियमानस्स खो पनाहं, भिक्खवे,
इदं दुक्खं ति पञ्ञापेमि,
अयं दुक्खसमुदयो ति पञ्ञापेमि,
अयं दुक्ख निरोधो ति पञ्ञापेमि,
अयं दुक्ख निरोधगामिनी पटिपदा ति पञ्ञापेमि।

अंगुत्तरनिकाय-३-७-१०

जो व्यक्ति शरीर पर होनेवाली संवेदनाओंका अनुभव कर रहा हो, हे साधको ! मैं,

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूँ, सिखाता हूँ कि —यह दुःख है।

उसी को यह सत्य प्रज्ञापित करता हूँ, सिखाता हूँ कि —यह दुःखकी उत्पत्ति है।

उसीको यह सत्य प्रज्ञापित करता हूँ, सिखाता हूँ कि —यह दुःखका निरोध है।

उसीको यह सत्य प्रज्ञापित करता हूँ, सिखाता हूँ कि —यह दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदा है।

संपर्क होनेसे ही होता है। इससे सारा प्रपंच स्पष्ट होने लगता है। किसी भी इंद्रिय द्वार पर तत्संबंधित विषयके संपर्क में आने पर मानसका एक भाग जाननेका काम करता है, दूसरा पहचाननेका और मूल्यांकन करनेका, तीसरा संवेदनशील होनेका और चौथा प्रतिक्रिया करनेका काम करता है। देखते हैं कि पांचों इंद्रियां तो शरीर पर केंद्रित हैं ही, मन भी शरीर पर ही स्थित है। शरीर से अलग नहीं। अतः हमारे लिए शारीरिक इंद्रियोंके सभी आलंबनोंकी और इसी प्रकार मनके सभी आलंबनोंकी वास्तविक सच्चाई बाहर नहीं बल्कि अपने शरीरकी सीमाके भीतर है। सच्चाई के इस महत्वपूर्ण हिस्सेको भुला दें तो सत्यकी पूर्णता नहीं प्राप्त होती। बाहरकी सच्चाई का शरीरकी सीमाके भीतर वेदन करना याने अनुभव करना और उस वेदनको भी साक्षीभावसे देखना ही सत्यकी संपूर्णताकी ओर बढ़ना है बाहरके सभी रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्शव्य–पदार्थ का और भीतरके संकल्प–विकल्पका प्रत्यक्षीकरण करता है तो अपने शरीर और मनके संयुक्त धरातल पर उनका अनुभव करता है याने वेदन करता है। साधक इस अनुभवसे जान लेता है कि यह वेदन सुखद हो या दुखद, सूक्ष्म हो या स्थूल सर्वदा अनित्य ही है। जो अनित्य है वह दुःख ही है। जो स्वभावसे ही अनित्य है उस पर हमारा कोई अधिकार नहीं, प्रभुत्व नहीं। इस अनित्यधर्मा को नित्यधर्मा बनाना चाहें तो बना नहीं सकते। दुखधर्मा को सुखधर्मा बनाना चाहें तो बना नहीं सकते। इसी मानेमें अनात्म है।

बाहर या भीतरके किसी भी आलंबनका जब-जब यों प्रज्ञा–पूर्ण स्वानुभव होता है या वेदन होता है तो अनित्य, दुख, अनात्म बोध ही जागता है। इससे अहं, मम की सघन माया पिघलती है। पूर्ण सत्य स्पष्ट होता है। क्योंकि अब इंद्रियोंका आलंबन मात्र ही प्रमुख नहीं रह जाता बल्कि उसके साथ-साथ आलंबनके अस्तित्वका वास्तविक आधार याने अपने तन और मनके संयुक्त धरातलका भी बोध होने लगता है। उस पर होनेवाली हलचल का भी बोध होने लगता है। इस अवस्था में सत्य आंशिक न रहकर पूर्ण होने लगता है। अन्यथा तन और मन के जिस संयुक्त धरातल पर आलंबनका अस्तित्व है वह धरातल ही अन जाना रह जाय तो आलंबनका यह सत्य आंशिक ही रहता है और भ्रम–भ्रांति पैदा करता रहता है। विपश्यनाका अभ्यास इसीलिए है कि शनैः शनैः प्रयत्नों द्वारा उस अवस्था पर पहुचे जहां संप्रज्ञान याने संपूर्ण जानकारीवाली सजगता बनी रहे। हर अवस्थामें बनी रहे। लेटे, बैठे, खड़े, चलते–फिरते, खाते-पीते, नहाते–धोते, बोलते–मौन रहते, सुनते, देखते, चखते, सूंघते, छूते संपूर्ण सजगता बनी रहे। चिंतन चले तो भी स्पष्ट अनुभव होता रहे कि मन सदैव शरीरसे जुड़ा है। अतः चिंतन का आधार केवल मन ही नहीं बल्कि मन और तनका संयुक्त धरातल है। चिंतनके समय मन शरीरके बाहर नहीं चला जाता। मन उस समय के काल्पनिक विषयमें रमण करने लगता है पर रहता शरीरमें ही है। लेकिन अज्ञानतावश अपने ही आधार को याने शरीरको और शरीरपर होनेवाली संवेदनाओंको भुला देता है। आंशिक सत्यकी माया उसे भरमा देती है। परन्तु जब होश जागता है तो फिर स्वस्थ हो जाता है। "स्व" में स्थित हो जाता है। संवेदनाओंका आधार नहीं छोड़ता तो संपूर्ण सत्यकी सजगतामें प्रतिष्ठित होता है। यही प्रज्ञामें प्रतिष्ठित होना है।

जब ऐसा होता है तो ही सही मानेमें आर्यसत्योंका साक्षात्कार होता है। आर्य सत्य केवल श्रद्धाके भावावेशसे अथवा बुद्धिके तर्क-विलाससे स्वीकार करने के लिए नहीं हैं। इनका दर्शन हो याने अनुभव हो, वेदन हो तो ही आर्य-सत्य आर्यसत्य हैं। साधक वेदनके आधार पर ही समझता है कि जो दुखद है सो तो प्रत्यक्ष दुख है ही परन्तु जो सुखद है अथवा असुखद-अदुखद है वह भी अनित्य होनेके कारण अन्ततः दुखधर्मा ही है। और इसी संपूर्ण सजगताके आधार पर इस प्रथम आर्यसत्यका दर्शन करने लगता है!

इसी प्रकार साधक प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा देखता है कि बाहरी या भीतरी आलंबन जो भी हो, तन और मनके संयुक्त धरातल पर जब-जब उसकी प्रिय संवेदना होती है तब तब रागकी तृष्णा जगाकर और अप्रिय संवेदना होती है तब-तब द्वेषकी तृष्णा जगाकर दुखी ही होता है। इस प्रकार दुखके कारण रूपी दूसरे आर्यसत्यका भी स्वयं साक्षात्कार करता है।

इस संपूर्ण सजगताके कारण ही दुःखोंसे मुक्त होनेका मार्गदर्शन होता है। मुक्तिके मार्ग पर हर कदम संपूर्ण सजगतासे उठाता है।

ऐसी अवस्थामें दर्शन मात्र फिलासफी नहीं रह जाता। प्रज्ञा केवल श्रुतमयी या चिंतनमयी नहीं रह जाती। अब प्रज्ञाका वास्तविक जीवन जीता है। प्रज्ञा अनुभूतियोंके स्तर पर भावित होती है। अतः भावना-मयी होती है। इससे **दर्शन सम्यक्** होता है; गलत नहीं, मिथ्या नहीं।

इसी प्रकार जो **संकल्प-विकल्प** होते हैं वे **सम्यक्** ही होते हैं, गलत नहीं, मिथ्या नहीं।

ऐसा संपूर्णतया सजग साधक जब वाणी से कुछ बोलता है तो सत्य हीं, मिथ्या नहीं; मधुर ही, कटु नहीं; सार्थक ही, निरर्थक नहीं। यों **वाणी सम्यक्** होती है।

शरीरसे जब कोई काम करता है तो भी सम्यक् ही करता है। ऐसा कोई काम नहीं करता जिससे अन्य प्राणियोंकी हानि हो। न हत्या करता है, न चोरी, न व्यभिचार, न मद्यसेवन। यों **कर्मान्त स्वतः सम्यक्** हो जाते हैं।

आजीविका ऐसी होती है जिससे अन्य प्राणियोंको अपने सदाचार भंग करनेका प्रोत्साहन न मिले। अन्य प्राणियोंकी सुख-शांति भंग न हो। यों **आजीविका सम्यक्** होती है।

सारे मानसिक व्यायाम याने प्रत्यक्ष पुरुषार्थ भी सम्यक् होते हैं। नया दुर्गुण अपने भीतर आने नहीं देता। जो पुराने संग्रहित हैं उन्हें दूर करता है। जो सद्गुण नहीं हैं, उनको जगाता है और जो हैं उनका संवर्धन करता है। यों **सम्यक् व्यायाम होता है।**

संपूर्ण जानकारीवाली सजगता होती है तो ही **स्मृति सम्यक्** होती है।

यों क्षण-क्षण संपूर्ण सजग रहता हुआ चित्तकी जो एकाग्रता प्राप्त करता है, **समाधि** उपलब्ध करता है वह भी **सम्यक्** होती है, मिथ्या नहीं, भ्रामक नहीं, कल्पनाजन्य नहीं।

साधक अष्टांगिक आर्य-मार्गका यों अनुभूतियोंके स्तर पर दर्शन

करता है, तो इस आर्य सत्यका जीवन जीता हुआ नए संस्कार बनाना बंद कर देता है और पुरानोंका क्षय करते करते इसी जीवनमें इंद्रियातीत निर्वाणिक अवस्थाकी अनुभूति कर लेता है और इस प्रकार दुःख निरोधकी आर्य अवस्था पर पहुंच जाता है।

यों आर्यसत्योंका धर्म जब केवल अंधभावावेश अथवा बौद्धिक ऊहापोहका विषय न रहकर धारण करनेका विषय बन जाता है। तब वस्तुतः परम कल्याणकारी होता है।

आओ साधको! अपने तन और मनके संयुक्त धरातल पर क्षण प्रतिक्षण प्रकट होनेवाली संवेदनाओंकी सच्चाइयोंकी संपूर्ण जानकारी रखते हुए सतत् जागरूकताका जीवन जीनेका अभ्यास करें और वस्तुतः अपना परम मंगल-कल्याण साध लें!

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.

विपश्यना साधना धन्य है।

पू. गुरूजी,

मेरा मन आपके प्रति अत्यंत कृतज्ञ हो रहा है। धन्य है विपश्यना साधना जो आपने मुझे सिखाई! कल रात मुझे जो अनुभव हुआ वह अविस्मरणीय तो है ही, साथ ही जीवनके प्रति एक नवीन दृष्टिकोण और विपश्यनाके प्रति कृतज्ञता एवं आपके प्रति अनंत करुणा, मैत्री तथा जीवनके अंतिम सांसों तक अनन्य श्रद्धा और उपकार-भाव प्राप्त हुआ।

मौसम परिवर्तनके प्रभावसे मैं कुछ दिनोंसे बीमार था। कल मेरे डॉक्टरने कोई इंजेक्शन लगाया जिसकी प्रतिक्रिया सारे शरीरमें होने लगी। मेरा दिल बैठने लगा, सांसें उखड़ी-उखड़ी और रुक-रुककर चलने लगीं। उनींदी आखें होकर मैं अचेत होते जा रहा था। मुझे लगा कि सारा शरीर पैरेलेसिसकी गिरफ्तमें जा रहा है। मैं हिल भी नहीं सकता था। हाथ-पैर में बांकपन आ गया। डॉक्टर बेचारे परेशान हो गए। मुझे सचेत रखनेके लिए चेहरे पर बार-बार पानी के छींटे डालने लगे और कुछ लोग चेतना लौटानेके लिए शरीरको खूब सहलाने लगे।

मेरी स्थिति बिगड़ती ही जा रही थी। अब मेरी जबान भी टेढ़ी पड़ गई और अन्दर मुड़ने लगी। हालत कुछ सोचने-समझनेके बाहर हो गयी। डॉक्टर कुछ पूछे जा रहे थे जिसे मैं कुछकुछ समझ रहा था पर कोई प्रतिक्रिया नहीं कर पाया। मुझे लगा कि शायद अब मैं जीवित नहीं रहूंगा और यदि रहा भी तो मेरे शरीरमें कोई विकृति आ जायेगी। वह मरणांतक अनुभव बड़े कामका सिद्ध हुआ। कुछ सोचनेके नाम पर मैं केवल आपको याद कर रहा था। आपके शब्द अन्तरमनमें गूंजने लगे, "विपश्यी साधक कभी बेहोशीमें नहीं मरता। प्रतिक्षण खूब सजग-सावधान रहता है।" मैंने अनुभव किया कि जैसे मौतकी गिरफ्त में जा रहा था, अब कुछ कर नहीं सकता। मजबूर था, शिवाय विपश्यनाके अब और कोई उपाय नहीं था। मेरा अचेतन मन जैसे साधना करने लगा और समूचे शरीरमें तीव्र प्रवाह फूट पड़ा और कंपन की अनुभूतियां होने लगीं। दिमाग में जैसे सहस्त्रों चींटियां रेंगने लगीं। डॉक्टर चीख रहे थे कि जोरसे सांस लो। मैं सांसको भी देखने लगा और असह्य वेदनामयी संवेदनाओं को भी स्थितप्रज्ञाता एवं साक्षीभावसे जानने लगा। फिर कोई निर्णय करके डॉक्टरने पुनः कोई इंजेक्शन लगा दिया और फिर धीरे-धीरे सामान्य प्रतिक्रिया होने लगी।

अब मैं पूर्ण स्वस्थ हूं। परन्तु वह १५-२० मिनट मुझे मृत्युका अनुभव दे गए। शायद प्रकृति यही सिखाना चाहती थी कि विपश्यना मृत्युको प्राप्त होना सिखाती है। मुझे लगता है जैसे प्रकृति प्रत्येक प्राणीमात्रसे विपश्यना करवाती है क्योंकि वह अनुभव और अधिष्ठान के अंतिम पांच मिनटके अनुभव कुछ-कुछ मिलते-जुलते हैं। उसमें अन्तर यही है कि प्रकृति अत्यंत निर्दयता से हमें मजबूर करती है जबकि अधिष्ठानके समय हम हाथ-पैर न खोलने एवं पीड़ाको झेलनेका संकल्प करते हैं।

मेरा मन आपके प्रति अत्यंत श्रद्धाभाव-विभोर है। विपश्यना साधनामें मेरी श्रद्धा और मजबूत हो गयी है। धन्य है ऐसी साधना जो ऐसी घोर विपत्तिमें भी काम आती है और उससे बाहर निकालती है। धन्य हैं आप गुरुजी! जो सभी को बिना किसी भेद-भावके अनन्त करुणा एवं मैत्रीभाव से शुद्ध व्यावहारिक करणीय धर्म की शिक्षा बांटते जा रहे हैं। इससे सभी का कल्याण हो! सबकी स्वस्ति-मुक्ति हो! यह शुद्ध धर्म कितना व्यावहारिक एवं करणीय है! सभी इससे लाभ उठाएँ! दसों दिशाओंमें इसकी ख्याति व्याप्त हो!

– विवेक लोवलेकर, ४, गोतमपुरा, मेन रोड, इंदौर.

बीरगंज (नेपाल)

RS ९. ६-१२-८३ से १६-१२ ८३ तक स. आ. श्री रामसिंह

संपर्क : १) श्री द्वारकाप्रसाद सिकरिया, मर्केन्टाइल बिल्डिंग,
आदर्श नगर, बीरगंज (नेपाल) फोन : २२७४ / २७७४
*अथवा D. P. SIKARIA, पोस्ट बॉक्स नं. १४३८
काठमांडौ (नेपाल) फोन : १५७१५ (P. P.)
Cable- DEEPEE, KATHMANDU
* भारतके बड़े शहरों से इस पते पर डाक जल्दी पहुंचती है।
२) श्री विश्वनाथ शाह, "मुरली" बीरगंज (नेपाल)
फोन : २२७३ / २७७३

जगन्नाथ पुरी (उड़ीसा)

LN ११. १६-१२-८३ सायं. से २६-१२-८३ सायं. तक
स. आ. श्री राठीजी

संपर्क : १) श्री सुदर्शन ढंढारिया,
४८-डी, मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७०००००७.
फोन – ३४४७९२/३४१३९३
२) श्री पद्मश्री सदाशिव रथशर्मा, चारण गोष्ठी,
पिथुरिया शाही, जगन्नाथपुरी-७५२ ००१.

वाराणसी

LN १२. १९ मार्च ८४ सायंसे २९ मार्च ८४ सुबह तक श्री राठीजी

स्थान– बर्मीज बुद्धिस्ट विहार, S-17/330A, मलदहिया, वाराणसी.

सम्पर्क– श्री सुशीलकुमारजी मेहरोत्रा, डी-६२/४, डी-३/१.
सोनिया रोड, वाराणसी-२२१ ०१०.

श्रावस्ती

लघु-शिविर – (केवल पुराने साधकोंके लिए) श्री राठीजी

२९ मार्च की रात्रि प्रारंभ होकर २ एप्रिल की सुबह समाप्त होगा

सम्पर्क – श्री सुशीलकुमारजी मेहरोत्रा, वाराणसी के पते पर

भावी कार्यक्रम

इगतपुरी

शि. क्र.	दिनांक	संचालक
BP १२.	२२-१२-८३ से २-१-८४ तक	स. आ. श्री पालीवाल
,, १३.	३-१-८४ से १४-१-८४ ,,	,, ,,

दीर्घ शिविर– १०-१२-८३ से ९-१-८४ (स्वीकृति प्राप्त पुराने साधकोंके लिए)

आचार्य-स्वयं-शिविर– १४-१-८४ से २७-१-८४ तक (,,)

(इस आचार्य-स्वयं-शिविरके दौरान "विद्यापीठ" बिल्कुल बंद रहेगी कोई भी अतिथि अथवा साधक पू. गुरुजी से संपर्क नहीं कर सकेगा।)

BP १४. २९-१-८४ से ९-२-८४ तक स. आ. श्री पालीवाल

संपर्क :– व्यवस्थापक, विपश्यना विश्व विद्यापीठ, धम्मगिरि, इगतपुरी, (महाराष्ट्र) पिन : ४२२ ४०३ फोन – इगतपुरी–७६

जयपुर

NH १५. २२-१२-८३ से १-१-८४ तक स. आ. श्री पारीखजी

२४२. १–२–८४ से ११–२–८४ तक (हिन्दी) पू. गुरुजी

सतिपट्ठान-सुत्त–शिविर ११-२-८४ से २२-२-२-८४ तक (केवल स्वीकृति प्राप्त पुराने साधकोंके लिए)

२० दिनका शिविर– १-२-८४ से २२-२-८४ तक ,, ,, ,,

संपर्क : श्री श्याम सुंदर मूंदड़ा
द्वारा– मे. श्याम कॉरपोरेशन, मुनोत निवास
रामलालजी का रास्ता, जौहरी बाजार, जयपुर–३०२ ००३
फोन–६५४१४ घर : ६३३२२

हैदराबाद

२४३. ११–३–८४ से २२–३–८४ तक (हिन्दी) पू. गुरुजी

संपर्क : १) – श्रीमती ऊषाबेन मेहता, १०–२–२८९/८४, शांतिनगर कालोनी, हैदराबाद–५०००२८ फोन–३०२९१

२) श्री पूरनमल अग्रवाल, C/o होटल राजधानी, सिद्दियम्बर बाजार, हैदराबाद– ५००००१ फोन–५७५७१. घर : २२४०३५

मद्रास

२४४. २२-३-८४ से २-४-८४ तक (हिन्दी) पू. गुरुजी

संपर्क : १) श्री रूपचंद अग्रवाल, द्वारा–गोटेवाला आर. जी. ब्रदर्स, १४८, मिन्ट स्ट्रीट, मद्रास–६०००००१. फोन– ३७३९९, घर–३५१९५.

२) विपश्यना ध्यान केन्द्र, द्वारा श्री हरिभाई संघवी, नं. १२, कोंडाचेट्टी स्ट्रीट, मद्रास–६००००१. फोन– २४०१५, निवास–४३१४२८

M/s. आनंद कटपीस हाऊस
१०, श्याम वाडी, रानाडे रोड, दादर बम्बई–४०० ०२८
की मंगल कामनाओं सहित

M/s. जानकीदेवी गोयन्का धर्मादा ट्रस्ट
गोयन्का हाऊस, झुंझुनू (राज)
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

उलझण ही उलझण बढ़ी, रह्यो बहिरमुख मूढ़ ।
अन्तरमुख होये बिना, सांच न समझै गूढ़ ॥
जो अन्तस कै मूल तक, रै सी सजग सचेत ।
मन का दुखड़ा उखड़सी, पासी सुख अणमेत ॥
इंद्रिय सुख को बावळा ! क्यां को हरख मनाय ?
अै पाणी का झाग है, बण–बण बिगड़्या जाय ॥
बिन बेदन ही उलझग्यो, मत मतांतरा मांय ।
यो तो बुद्धि–किलोल है, सम्यक् दरसन नांय ॥
निज बेदन सूं जाणग्यो, जो जग को परपंच ।
बीं की छुटग्यी भरमणा, राग र यो ना रंच ॥
जीवन मँ संकट जगै, धीर ! धरम ही धार ।
धीरज सूं कट जावसी, बिपदा का दिन चार ॥

दोहे धर्म के

पूर्ण सत्यके होशमें, सतत् सजग जो होय ।
निर्भय हो, निर्वैर हो, सतत् निरापद होय ॥
बाहर भीतर सत्य का, जागे सम्यक् ज्ञान ।
कर्मों के बंधन कटें, जगे मुक्ति मुस्कान ॥
तन मन के संयोग का, अन्तर वेदन होय ।
मिटे आवरण मोह का, विभ्रम विघटित होय ॥
भ्रम ही भ्रम पैदा करे, सदा अधूरा ज्ञान ।
मृग–मरीचिका दूर हो, जगे पूर्ण जब ज्ञान ॥
कोरे बुद्धि विलास से, होय नहीं कल्याण ।
आर्य पंथ पर जब चले, तब पाए निर्वाण ॥
मरणांतक पीड़ा जगे, चित्त न विचलित होय ।
अन्तर में प्रज्ञा जगे, धर्म सहायक होय ॥

सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट के लिए मुद्रक, प्रकाशक एवं संपादक : रामअवतार यादव, ग्रीन हाऊस, २ री मंजिल, ग्रीन स्ट्रीट, फोर्ट, बंबई–२३. टेलीफोन : ३१३५१०. ● मुद्रण स्थान : अक्षरचित्र मुद्रणालय, सातपूर, नासिक–४२२ ००७. टेलिफोन : ८८२५१. ● पत्रिका में विज्ञापन दर : आधा पृष्ठ रु. १०००/–, चौथाई पृष्ठ रु. ५००/– ● वार्षिक शुल्क रु. १०/–, आजीवन शुल्क रु. १००/–

"विपश्यना" 11/83

Licence No. NS 18
Licensed to post without pre-payment

पो. रजि. नं NSM:16/83

प्रेषक :
सयाजी ऊ बा खिन मेमोरियल ट्रस्ट.
विपश्यना विश्व विद्यापीठ
धम्मगिरि, इगतपुरी–४२२ ४०३.
(नासिक, महाराष्ट्र)

To